International Journal of Jyotish Research: 2016; 1(1): 01-02

ISSN: 2456-4427
Impact Factor: RJIF: 5.11
Jyotish 2016; 1(1): 01-02
© 2016 Jyotish
www.jyotishajournal.com
Received: 01-05-2016
Accepted: 02-06-2016

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

Correspondence
डॉ. नन्दन कुमार तिवारी
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

सम्पादक की लेखनी से .....

श्रीरामचन्द्रचरणौ मनसा स्मरामि । श्रीरामचन्द्रचरणौ वचसा गृणामि ।।
श्रीरामचन्द्रचरणौ शिरसा नमामि । श्रीरामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये ।।

भारतवर्ष की बौद्धिक परम्परा में 'वेद' को सर्वविद्यामूलक कहा गया है और उस वेदरूपी पुरूष के अंगभूत छः शास्त्रों – शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द एवं ज्योतिष में ऋषियों द्वारा ज्योतिषशास्त्र का स्थान चक्षुरूप में निर्धारित किया गया है । आचार्य भास्कर ने भी स्वग्रन्थ 'सिद्धान्तशिरोमणि' में कहा है – वेदश्चक्षुः किलेदं स्मृतं ज्योतिषम् । कालनियामकत्वेन ज्योतिष शास्त्र को 'कालशास्त्र' भी कहा जाता है । विश्व के समस्त चराचर प्राणी कालाभिभूत हैं, इसीलिए यह शास्त्र प्राणीमात्र के लिए और भी आवश्यक व उपयोगी सिद्ध हो जाता है, इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं ।

ज्योतिषशास्त्र का उद्भव सृष्टयोत्पत्ति के साथ हुआ है तथा सृष्टि के अवसान पर्यन्त यह अविच्छिन्न रूप से गतिमान है । कश्यपसंहिता के अनुसार भगवान सूर्य से लेकर शौनकादि पर्यन्त (सूर्य, पितामह, वेदव्यास, वशिष्ठ, अत्रि, पराशर, कश्यप, नारद, गर्ग, मरीचि, मनु, अंगिरा, पौलिश, लोमश, च्यवन, यवन, भृगु, तथा शौनक) अष्टादश ऋषियों का नाम ज्योतिषशास्त्र के प्रवर्त्तकों में आता हैं । ज्योतिष के मुख्यतया तीन स्कन्ध प्रतिपादित हैं – सिद्धान्त, संहिता एवं होरा। त्रुट्यादि से प्रलयान्त पर्यन्त की गई काल गणना, ग्रहस्पष्टीकरण, मानव–दैव–जैव–पैत्र–आर्क्ष–सौर–सावन–चान्द्र–ब्राह्मादि नवविधकालमानों का सांगोपांग कथन, व्यक्ताव्यक्तत्रिकोणमितीयगणितोपपादन, वेधोपयुक्त यन्त्रों का निरूपणादि जिस स्कन्ध में हो, उसे सिद्धान्त तथा ज्योतिषशास्त्र के जिस स्कन्ध में भूपृष्ठोपरि स्थित समस्त चराचर प्राणियों का शुभाशुभ लक्षण, प्राकृतिक एवं आकाशीय घटनाओं का विवेचन तथा विश्व सम्बन्धित समस्याओं का कारण व निवारण का उल्लेख हो उसे 'संहिता' और प्रत्येक मानव का उसके जीवन सम्बन्धित (जन्म समय, तिथि व स्थान के आधार पर गणनोपरान्त) शुभाशुभ फलों का विवेचन जिस स्कन्ध में हो वह होरा संज्ञक है ।

यद्यपि ज्योतिषशास्त्र का क्षेत्र इतना विहंगम है कि उसमें प्रत्येक का अनुसन्धान सर्वथा सुलभ नहीं है तथापि मानव जीवन में नित्य ज्ञान का विस्तार हो इस हेतु मानव अपनी बौद्धिक क्षमताओं के आधार पर नवीन – नवीन अनुसन्धान करने हेतु प्रयत्नशील रहता है । ज्योतिषशास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सूर्यसिद्धान्त' में मुख्यतः दो प्रकार के काल कहे गये है – प्रथम प्राणियों का अन्त करने वाला 'अन्तकृत काल' एवं दूसरा भौतिक जीवन का कलनात्मक काल। स्थूल – सूक्ष्म भेद से वह भी दो प्रकार का होता है जो मूर्त्त और अमूर्त्त संज्ञक है । जहाँ एक ओर वेदों में सूर्यादि नवग्रहों, नक्षत्रों, ध्रुवागस्त्यादि सप्तऋषियों तथा तारकाओं का स्तुतिपरक गान एवं उसका व्यापक उल्लेख मिलता है, वहीं दूसरी ओर आधुनिक युग में विभिन्न आधुनिक यंत्रो एवं तकनीक द्वारा आकाशीय ग्रहों – उपग्रहों, नक्षत्रों एवं तारकाओं की खोज एवं अनुसन्धान का भी प्रयत्न द्रष्टव्य होता है । सिद्धान्त ज्योतिष में सर्वप्रथम अहर्गण का ज्ञान कर उससे मध्यम ग्रह और पुनः मध्यम ग्रहों में विविध संस्कार करके ग्रहस्पष्टीकरण करने का विधान है। दिग्देशकालस्थितिगति वशात् मध्यम ग्रह और स्पष्टग्रह में भिन्नता होती है । इसीलिए मध्यम ग्रहों में विविध संस्कार द्वारा दृक्तुल्यसम्पादन प्रक्रिया से ग्रहस्पष्ट किया जाता है । प्राचीन ज्योतिर्विज्ञान के अनुसार पृथ्वी को स्थिर माना गया है एवं सूर्य को चलायमान, किन्तु आधुनिक ज्योतिर्विज्ञान के अनुसार सूर्य को स्थिर माना गया है एवं पृथ्वी को चलायमान। इसलिए ग्रहकक्षा में प्राचीन एवं अर्वाचीन मत में भेद है – एक भूकेन्द्रिक कक्षा की बात करते हैं तो दूसरा सूर्यकेन्द्रिक । उक्त दोनों विधाओं से संस्कार करने पर फल में कोई भेद नहीं होता है । प्राच्य मत में सूर्य– चन्द्र को ग्रह, भौमादि शनि पर्यन्त पॉच ग्रहों को तारा ग्रह तथा राहु – केतु को पातसंज्ञक कहा गया है, वहीं पाश्चात्य मत में सूर्य को ताराग्रह, चन्द्रमा को उपग्रह तथा भौमादि ग्रहों को ग्रहसंज्ञक तथा राहु – केतु को पात संज्ञक कहा गया है । पाश्चात्य मत में पृथ्वी, यूरेनस, नेपच्यून एवं प्लूटो को भी ग्रह कहा गया है । ज्योतिषशास्त्र के अनुसार तीसरी एवं चौथी शताब्दी में हीं आर्यभट ने भूभ्रमण का सिद्धान्त स्वग्रन्थ 'आर्यभटीयम्' में तथा भास्कराचार्य जी ने भू–आकर्षण का सिद्धान्त दसवी – ग्यारहवीं शताब्दी में स्वग्रन्थ 'सिद्धान्तशिरोमणि' में प्रतिपादित कर दिया था।

अर्वाचीन मत में उक्त दोनों का श्रेय केप्लर एवं न्यूटन को दिया जाता है, जो सर्वथा भ्रामक एवं अपूर्ण ज्ञान का द्योतक है । इसी प्रकार न जानें कितने भ्रामक तथ्यों को आज के शिक्षाविद् तीव्र गति से शैक्षणिक जगत् को परोस रहे है, जो निराधार एवं अपूर्णता से भरा है। इस दिशा में समयानुरूप शास्त्रज्ञों को यथार्थ मीमांसा कर वर्तमान शैक्षणिक जगत् को बोध कराते रहने की नितान्त आवश्यकता है ।

स्व – स्व कालखण्डों के प्रसिद्ध ज्योतिर्विदों में महात्मा लगध, वटेश्वर, श्रीपति, लल्ल, आर्यभट, वराहमिहिर, त्रिविक्रमभट्ट, भास्कराचार्य, केशव, गणेश, कमलाकरभट्ट, वेंकट, सामन्तचन्द्रशेखर, सुधाकरद्विवेदी आदि का नाम आता हैं । इन सभी ने अपने – अपने ग्रन्थों में ज्योतिषशास्त्र के समस्त तथ्यों को उजागर करने का पूर्णतः प्रयास किया है, जो आज भी प्रासंगिक है । इनके अतिरिक्त भी कई ज्योतिर्विद हुये हैं, जिन्होंने अपने दिव्य ज्ञान से ज्योतिष के इस ज्ञानधारा को निरन्तर प्रवाहित करते हुए परम्परा का निर्वहण किया है ।

पाश्चात्य ज्योतिर्विदों में हिपार्कस, आर्कमिडीज, टॉलमी, गैलेलियो, कॉपरनिकस तथा न्यूटनादि का नाम आता है, जिन्होंने अपने – अपने कालखण्डों में पूर्व प्रतिपादित सिद्धान्त को आगे बढ़ाने का काम किया है ।

सामान्यतः अल्पावधि में कालरूपी सिद्धान्तों की गणना तथा समय मान में कोई अन्तर नहीं होता, परन्तु दीर्घकालावधि में युगों के परिवर्तन के कारण कालान्तर भेद से विविध आकर्षण – प्रकर्षण – विकर्षण, अयन – चलन, शर इत्यादि तत्वों में अन्तर उत्पन्न होता है जिसके निराकरण हेतु शास्त्रों में वेधयन्त्रों द्वारा प्रत्यक्ष वेध को ही प्रमाण माना गया है तथा वेध द्वारा प्राप्त बीज संस्कार को पूर्व सिद्धान्त में संस्कारित करने से काल को शुद्धतम करने की परम्परा रही है । अतः त्रिस्कन्धात्मक ज्योतिषशास्त्र के आधाररूपक सिद्धान्त ज्योतिष की ग्रह गणित परम्परा के अन्तर्गत वेध तथा वेधशालाओं का महत्वपूर्ण स्थान है । वेध शब्द का निर्माण विध् धातु से हुआ है, जिसका अर्थ है – किसी आकाशीय ग्रह अथवा तारे को दृष्टि के द्वारा वेधना अर्थात् विद्ध करना । आर्यभट से लेकर मुरलीधर ठाकुर पर्यन्त सभी आचार्यों ने बीज संस्कार एवं वेधक्रिया को एकमत से स्वीकार किया है । वेधाभाव में ग्रहों का आनयन सम्यक्तया सम्भव नहीं है । अतः वेध क्रिया एवं वेधक्रिया हेतु वेधशालाओं का होना प्रासंगिक है ।

वैदिक ज्योतिष में युगों का वर्णन अनेकों बार आया है किन्तु वैदिक युगों का मान आज के युगों के कालमन से बहुत भिन्न है । समय के प्रवाह के साथ परवर्ती विद्वानों ने उन्हें और विस्तृत करके नई दिशा प्रदान की है। वेदांग ज्योतिष के अनुसार सर्वप्रथम युग का आरम्भ माघशुक्ल प्रतिपदा से होता है तथा पांच वर्ष के बाद पौषकृ –ष्ण अमावस्या को समाप्त होता हैं। जब सूर्य व चन्द्रमा दोनों धनिष्ठा तारों के साथ पूर्ण युति कर रहे थे, साथ ही बृहस्पति भी धनिष्ठा में ही था और जब यह आकाशीय घटना दृश्य हुई थी तब उस क्षण एक साथ सबसे पहला युग, चान्द्रमास माघशुक्ल पक्ष, उत्तरायण व शिशिर ऋतु आरम्भ हुई थी । दसवीं – ग्यारहवीं शताब्दी के आचार्य भास्कराचार्य ने अपने ग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणी में कहा है कि –

लंकानगर्यामुदयाच्च भानोस्तस्यैववारे प्रथमं बभूव ।
मधोः सितादेर्दिनमासवर्ष युगादिकानां युगपत् प्रवृतिः ।।

अर्थात् दशशिरपुरी लङ्का में जब सूर्य का प्रथम बार उदय हुआ उसी समय चैत्र शुक्ल रविवार से दिन, मास, वर्ष युग तथा कल्प आदि की प्रवृत्ति हुई अर्थात उस समय से सृष्टि का आरम्भ बताया गया है अर्थात आधुनिक मान सतयुग, द्वापर, कलियुगादि मान वैदिक मान से भिन्न हैं । कदाचित् इसीलिए भास्कराचार्य जी ने अपने श्लोक में 'बभूव' शब्द का प्रयोग किया है जो 'परोक्षे लृट' से बनता है, जो सम्भावना अर्थ में गम्य है। तद्दृष्ट्या उनका कथन सम्भावना युक्त रहा हो । यह अनुसन्धान का विषय है । वेदाङ्गज्योतिष में पांच संवत्सरों (वर्षों) के योग का एक युग माना गया है जैसा कि याजुषज्योतिष में कहा गया है । इस प्रकार वैदिक तथा वैदिकोत्तर काल में युगीयमान का तुलना करने पर भिन्नता परिलक्षित होती है।

गणित ज्योतिष में अहर्गण का महत्वपूर्ण स्थान है, जिसके अभाव में ग्रहस्पष्टीकरण करना सर्वथा दुष्कर है । ग्रहस्पष्टीकरण ज्योतिष का मूलाधार माना गया है क्योंकि सम्पूर्ण शुभाशुभ फलों का विवेचन गणिताधार ही है । मकरन्दप्रकाश एक तन्त्र ग्रन्थ है जिसमें कलियुगादि से अहर्गणानयन का उल्लेख है । आचार्य मकरन्द ने चौदहवीं सदी में मकरन्दसारिणी का निर्माण कर मकरन्दीयपंचांग निर्माण की परम्परा आरम्भ की थी । कालान्तर में इसी परम्परा को अग्रसर करते हुए मकरन्दविवरण एवं मकरन्दप्रकाश की रचना हुई है । मकरन्दप्रकाश के पूर्व ग्रन्थों में केवल गणितादि का विवेचन है किन्तु मकरन्दप्रकाश में गणितादि सह फलादेशादि कथन का भी समावेश है, जो इस ग्रन्थ की वैशिष्ट्यता कही गयी है । सुधी पाठक अवश्य लाभान्वित होंगे । साभार ।

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी